UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180595
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82 B57N Accession No. H3319

Author भट्ट, उदयशंकर

Title नहुष-निपात 1961

This book should be returned on or before the date last marked below.

नहुष-निपात

लेखक की अन्य रचनाएं

नाटक

क्रान्तिकारी (पुरस्कृत)	२·००
मुक्तिदूत (पुरस्कृत)	२·००
समस्या का अन्त (पुरस्कृत)	२·००
एकला चलो रे	१·००

एकांकी

विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य (पुरस्कृत)	३·००
आदिम-युग और अन्य नाटक (पुरस्कृत)	४·००
पर्दे के पीछे (पुरस्कृत)	३·००
कालिदास (पुरस्कृत)	२·००
जवानी और छः एकांकी	२·५०
सात प्रहसन	३·००

कविता

मानसी (पुरस्कृत)	२·००
युगदीप (पुरस्कृत)	२·००
अमृत और विष	२·००
इत्यादि	३·००
कणिका	१·५०

निबन्ध

साहित्य के स्वर	३·५०

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली–६

नहुष-निपात

पद्य-नाटिका

लेखक
उदयशंकर भट्ट

१६६१

आत्माराम एण्ड संस

दिल्ली • जयपुर • जालन्धर
नई दिल्ली • मेरठ • चण्डीगढ़

NAHUSH-NIPAT

by

Uday Shankar Bhatt

Re. 1·00

Checked 1969

●

प्रकाशक

रामलाल पुरी, संचालक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

हौज़ खास, नई दिल्ली

चौड़ा रास्ता, जयपुर

माई हीरां गेट, जालन्धर

बेगमपुल रोड, मेरठ

विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ़

मूल्य : एक रुपया

प्रथम संस्करण : १९६१

मुद्रक

सुरेन्द्र प्रिंटर्स प्राइवेट लि०

डिप्टीगंज, दिल्ली-६

COPYRIGHT (C) ATMA RAM & SONS, DELHI—6

नहुष-निपात

पहला दृश्य

[अमरावती के सिंह द्वार पर नहुष का रथ]

मातलि

हटा, गाँव औ' नगर, नदी, नद, सर, हटा,
हटा, गर्व से खड़े बड़े अड़ियल शिखर
हटा, मक्खियों सी फैली अगजगत् गति
हटा, झूमते चन्द्र, पवनगण गगन के;
किलकारी भरते, हुंकरते, गरजते
सब नभजीवी हटा, विहग उड़ते हटा।
मेघों का जलपिला तड़ित का खरहरा-
करके रथ के घोड़ों को विश्राम दे,
उनंचास पवनों के झोंकों झूमते
स्वर्गंगा की कमल सुरभि पी नई गति-
पाकर बढ़ते चढ़ते विद्युत अश्व ये
आ पहुँचे हैं इन्द्रपुरी के द्वार पर।

यहाँ सूर्य घर की खिड़की से चमकते
कभी न करते क्रोध, ग्रीष्म के ताप बन,
जलता कुछ भी नहीं; : रजत के शिखर सा
विधु भी अपनी शीतलता से शान्त है ।
स्वर्गलोक है, दुःख नहीं हैं कहीं भी,
सदा अनंत बसंत विचरता है यहाँ ।
देव, उतरिये रथ से पथ निर्विघ्न है,
सिंह द्वार पर दानवारि ध्वज उड़ रहा
करता स्वागत अभ्यागत का फहर कर,
वाद्य और गायन से गुंजित मंजु पुर ।

प्रतिहारी

जय हो, विजयी नृपति नहुष की विजय हो,
धर्म धाम, अभिराम तुम्हारी विजय हो ।

नहुष

(गर्व भरे स्वर में)

क्या यह ही है इन्द्रपुरी अमरावती ?

प्रतिहारी

(झुककर)

यह देवों की पुरी--

नहुष

....नहीं है यह बुरी ?

अति प्रसन्न मन मेरा प्रतिहारी सुनो,
जैसा सुनता आया हूँ उससे अधिक ।

प्रतिहारी

श्रवण और दर्शन में अन्तर स्पष्ट है
श्रव्य श्रव्य है और दृश्य फिर दृश्य है
दृश्य सदा दर्शन से होता तृप्त है ।

नहुष

नहीं दीखता दुःख लेश औ' कामना
कोई उगती नहीं, सभी परितृप्त हैं ।
यदि उठती है कोई मन में भावना
स्वयं पूर्ण होती सी लगती है मुझे ।

प्रतिहारी

स्वर्ग यही है काम्य कामना-कल्प तरु;
'यदि' अव्यय का नहीं यहाँ उपयोग है ।
सारे ही संभाव्य उपस्थित वद्धकर;
'आशा' के अक्षर हैं केवल कोश में—
लिखा मिलेगा 'नहीं' यहाँ, नर लोक में;
नहीं 'निराशा' का भाषा में प्रचलन,
पीड़ा, ताप, अभाव आदि वर्जित सभी-
और कल्पना रहती केवल काव्य में ?

नहुष

सुना नहुष ने, जान लिया है सभी कुछ
अमरावती पुरी का वैभव, किन्तु यह--
लोक-त्रय-विजयी क्रतुकर्त्ता नहुष भी
स्वयं कर्म से दीप्त तप्त कांचन सदृश-
अप्रधृष्य, अपने से किंचित् कम नहीं ?

प्रतिहारी

मणिकांचन संयोग हुआ फिर तो सुखद ।

नहुष

हाँ, तुम कह सकते हो ऐसा द्वारपति,
किंतु सुनो, गरमी लगती है क्यों मुझे
पवन नहीं चलता क्यों शीतल मंदगति ?
स्वेद कणों से स्नात भाल हैं ओस कण,
यद्यपि...

प्रतिहारी

आज्ञा दें मुझको तो मैं कहूँ ?

नहुष

हाँ, हाँ–

प्रतिहारी

तो यह यज्ञ कर्म का 'ताप' है
अनगिनती जो यज्ञ किये हैं आपने ?

नहुष

यह भी कुछ-कुछ सत्य लग रहा है मुझे ।
किन्तु नहीं था ऐसा तो नरलोक में ?

प्रतिहारी

यहाँ 'अहं' का ताप…

नहुष

क्या कहा ?

प्रतिहारी

उग्र है ।
सभी देवगण अभिनंदन हित उपस्थित-

नहुष

क्या वे ही जिनको आमंत्रित था किया
मैंने अपने यज्ञों में निज भाग हित ?

प्रति०

सभी सभी वे देव

नहुष

…आज वे मिलेंगे ।
चलना होगा ?… (**जयध्वनि**)

प्रति०

इच्छा केवल कीजिये (**दूसरा पर्दा हटता है**)

नहुष

सुन्दर, अति सुन्दर सिंहासन भव्य है
यहाँ कदाचित् मुझे बैठना चाहिये ।

देवमंत्री

नहीं, 'कदाचित्' का प्रयोग उपयुक्त है
सिंहासन शोभित है, उपकृत कीजिये ।

नहुष

(**बैठता हुआ**) हूँ,अब आगे···

देवमंत्री

देववृन्द हैं ।

नहुष

हाँ कहो ?

देवमंत्री

यह जो दक्षिण ओर पंक्ति में स्थित प्रख
निज-निज सिंहासन पर बैठे देव हैं
यम, कुबेर औ' वरुण, पवन, घन-मेघ हैं,
तपोमूर्त्ति उज्ज्वल यश भास्कर, चंद्र हैं,
महायशा सब देव; वृहस्पति महामति,
और दूसरी ओर सभी गंधर्वगण––
किन्नर अरुणायित तरुणी दल अप्सरा;
और मध्य में अप्रतिहत-गति काम है,

ब्रह्मा विष्णु महेश प्रसादित देव भू…
और…

नहुष

सभी कुछ जान लिया है नहुष ने !
बहुत काल से यह इच्छा थी आज वह
पूर्ण हुई है जप से, तप से, यज्ञ से,
पूत काम यह यशः काय नृप नहुष है ।
साध्य न कोई इसे सिद्ध तन नहुष है ।
अव न अभाव रहेगा कोई यहाँ पर
नहुप नृपति के पुण्य तेज से सभी सुख,
सभी शान्ति मुद मंगल होगा आपका !
और शत्रु भी…

देवमंत्री

मृतः प्राय हैं, शान्त हैं ।

नहुष

तो फिर क्या है शेष ?

देवमंत्री

विभव का भोग ही ।

नहुष

सुन्दर सुन्दर अति सुन्दर है यह सभी
मानव को अप्राप्य प्राप्य केवल मुझे

देवों का सम्मान, धन्य हूँ नहुष मैं ?
(**देवताओं की ओर**)
देव सभी निज कार्य करें कर्त्तव्यरत,
कहीं न हो त्रुटि कोई भी इस स्वर्ग में।
मर्त्य देव के कामों के प्रति सजग हैं
उन्हें अभाव न होना कोई चाहिए।
यदा कदा मैं स्वयं भ्रमण भी करूँगा
देखूँगा देवों का कैसा कार्य है ?
एक बात मैं और कहूँगा आप से
मेरी आज्ञा बिना न कोई कार्य हो।
नहुष सभी तो विधि विधान है जानता
कोई उससे गोप्य नहीं है चर अचर।

वृहस्पति

देवलोक है यह, परमावधि देव हैं,
स्वयं रूप हैं वे सब अपने कार्य के
स्वयं ज्वलित वे अग्नि सदृश आकल्पत्वय
उन्हें नहीं आदेश दिया जाता कभी।
आज्ञा बंधन मुक्त स्वयं वे 'कर्म' हैं।
भ्रमण करो तुम देखो जो कुछ देखना,
ज्ञेयजगत का यह प्रपंच सब भोग्य है
रोक सकेगा नहीं कभी कोई तुम्हें।

देवमंत्री

यद्यपि 'इच्छा' नहीं कहीं होती यहाँ,
स्वयं पूर्ण होती होते ही चाह के,
किन्तु पाप की इच्छा करते ही नहुष,
स्वयं पतित होता है पापी स्वर्ग से।

वृहस्पति

है सौभाग्य हमारा आये आप हैं।
स्वर्ग भोगिये देवाधिप बन आप भी,
हम स्वागत करते हैं आगत आपका,
हम प्रसन्न हैं सहयोगी हैं आपके।

पवन

बिजली से द्रुत मेरे वाहन अश्व हैं
पाते ही संकेत उड़ेंगे सब जगत्।

मेघ

मैं वाष्पों की धाराओं पर पथ बना
मरुद्गणों के रथ को पथ देता स्वयम्।

विद्युत

मैं ज्योतित करती हूँ रथ को ज्योति से
रश्मि रेख पथ पर रथ के पवनाश्व ये
बिहर रहे अप्रतिहत गति से, बिहरिये
इच्छागामी वल्गा ले मम ज्योति की।

सूर्य

मुझको है अवकाश ठहरने का नहीं
सरण शील औ' क्रियाशील अभ्रांत मैं ।

विधु

भुक्तोज्झित पथ पर चलना है कार्य मम
दीर्घतमस में भी मैं ही स्मयगात हूँ ।

यम

सभी अनावृत आवृत करता हूँ जगत
मेरी किरणें मरण जागरण उगलतीं ।
कभी न होता पक्षपात विप्रीति औ'
समदर्शी सब न्याय तुला पर तोलता ।
मुझे नहीं है आज्ञा की, आदेश की
चिन्ता मुझको नहीं किसी के ज्ञान को ।

वृहस्पति

सुनो, यही है कार्य देवगण का यहाँ,
इन्द्रासन भी यम नियमों से ही बना,
जिस पर बैठे शक्र सभी कुछ देखते,
यह दर्शन ही परम कार्य है इन्द्र का ।

देवमंत्री

महा तपस्वीजन ही पाते इन्द्रपद,
भोग्य न कोई, सदा वासना तृप्त सब ।

देवजनों का परमाराध्य स्वकर्म है,
कुछ भी है अप्राप्य न इनको काम्य भी,
इसीलिए ये देव कहाते हैं नहुष !

वृहस्पति

जरा हीन, शैशव विहीन हैं हम सभी
यौवन ही है यहाँ चिरंतन और नव,
दो ही ऋतु हैं यहाँ शरद् औ' कुसुम ऋतु,
'एकेच्छा' ही सदा कार्य में रत रहें।
जिसको जो कुछ सौंपा है, देवेश ने,
होता है व्याघात नहीं उस कार्य में,
सब स्वामी हैं अपने अपने कार्य के
सृष्टि-क्रम में भेद न हो उद्देश्य यह
सदा सामने रहता है हर अमर के।

नहुष

किन्तु मानता हूँ मानव को श्रेष्ठ मैं
कालान्तर में वही देवता स्वयं बन
करता है सम्पूर्ण देवगण कार्य को !
मुझे स्मरण होता रहता नर लोक का
यज्ञ और तप द्वारा यश अर्जित किया,
मेरी जीवन कीर्ति स्वर्ग में व्याप्त है।

वृहस्पति

मानव है सोपान समुन्नति, ह्रास का
दोनों ही पथ पा सकता है चाहकर,
किन्तु चाहना का अभाव है देव में
वह केवल देवत्त्व कर्म की मूर्ति है।
तुमने करके यज्ञ और जप दानकर,
संचय करके पुण्य प्राप्त यह पद किया,
संस्कारों के अंकुर अब भी शेष हैं
इसीलिए नरलोक कर्म लगते सुखद,
बुरा नहीं है ऐसा भी संभव नहुष ?

नहुष

(क्रोध से चिल्लाकर)

क्या मेरे संस्कार हेय लगते तुम्हें ?
कौन काम्य है जो मैं पा सकता नहीं।
चाहूँ तो मैं स्वर्ग करूँ नर लोक को--
और स्वर्ग को नरक बना दूँ....

वृहस्पति

शान्त हों।
सभी नियम में बँधा चल रहा चक्र जग।

नहुष

कोई भी अप्राप्य नहीं हैं नहुष को।

वृहस्पति

कहने भर से सब संभव होता नहीं,
मनुज कर्म है सीमित, सीमित ज्ञान है;
विश्व नियम है सृष्ट प्रकृत विज्ञान के,
उस अदृश्य के, उस परमेश महान् के,
हम सब उसके दास कर्म संकेत हैं ।

नहुष

मैं बन सकता ब्रह्म, विधाता विश्व का,

वृहस्पति

यदि हो वैसी शक्ति-

नहुष

शक्ति मुझ में निहित ।

वृहस्पति

तो पा सकते निश्चय ही वह ज्योति पद !

नहुष

क्या मुझ में वह नहीं ?

वृहस्पति

(**हँसकर**) सत्य तो है यही ।
केवल कहने भर से कुछ होता नहीं ।
जितना तुमने किया उसे भोगो नृपति,
'गर्व' शत्रु है इसे न अपनाओ अरे ?

नहुष

(क्रोध में सिंहासन से उतर और पैर पीटकर)

क्या कहते हो ?

वृहस्पति

यही कि जानो स्वयं को,
सीमा में ही रहो इसी में है भला ।

नहुष

हटो, ब्रह्म बनने की मुझमें कामना
उदित हुई है ब्रह्म बनूँगा मैं स्वयम,
सब प्रपंच मेरे अनुशासन में रहे,
मुझ में सृष्टि-स्थिति की क्षमता जागती ।
तब—जग मेरे नाचेगा संकेत पर ।

(चुप्पी)

वृहस्पति

सभा विसर्जित हो,

देवमंत्री

आज्ञा गुरुदेव की ।
नहुष यथा रुचि कार्य करें विश्राम लें ।

नहुष

बार-बार 'तुम' यही यहाँ की सभ्यता ।

देवमंत्री

इसका उत्तर अभी दिया आचार्य ने ।
अभी करें विश्राम म्लान मन आपका ।

(दृश्य परिवर्तन)

दूसरा दृश्य

[अपने प्रासाद के ऊपर टहलता हुआ जहाँ से लोक-लोकान्तर दिखाई दे रहे हैं।]

नहुष

कितने सुन्दर लोक-लोक के दृश्य हैं
हैं कितने रमणीय जगत जीवन विभव ?
सभी कल्पनातीत, सभी अद्‌भुत सुखद,
पवन तरंगितपथ मेघायित बिम्ब छवि,
सूर्य रश्मि की रूपच्छवि के मद उदधि
में न्हाते रहने का कौतुक अबुझ है।

उर्वशी

गर्जित मेघों की माला ज्वालावलित—
बिजली के पीले केशों की लहरती–
लटें निराली सुषमा से न्हाती हुईं।

नहुष

किसी सुन्दरी के उन्मादी प्राण सी
आभा में आकण्ठ डूबता सा रहा।

किसी कामिनी की दन्तावलि-सी भली
विधु की मणिमय किरणों का फैलाव भी
अपनी स्वच्छच्छवि से हँसता प्राण को
सुख तरंग से प्राणित करता है सदा ।
मन होता था सदा देखता ही रहूँ
कहीं न कोई खेद भेद का भाव है ।
सबमें समरता का सागर लहरता
लगता जैसे है अभाव कोई नहीं ।
बिना हिले बिनडुले अचानक औ' अचक
इच्छा करते ही पहुँचा औत्सुक्य भर
नभ धारा में पर्वत सम मणि की चमक–
पाकर जब मैं उड़ा स्वर्ग गंगा निकट
निरखे शतशत लक्षों तारकदल खिले
अपनी गति में घूम रहे थे चक्र से
बिना रुके बिन झुके यंत्र से चलित सब,
कितना अद्‌भुत था गंगा का दृश्य वह
कितना प्राणोत्कर्ष हर्ष सागर सकल,
सचमुच ऐसा दृश्य कल्पना से परे
ज्ञान और अनुभूति चिन्तना से परे,
देखा ऐसा दृश्य नहीं था अब तलक
स्तर पर स्तर बनते लहराते पवन भी

चेतन में भरते जाते थे चेतना।

उर्वशी

लगता ज्यों नव शिखर अकल्प्य विराट् के
शतशत निर्झर फूट रहे शत रूप में—
चिर अनादि से द्वन्द्वातीत अनंत क्रम—
नहीं ज्योति वह, अंधकार भो नहीं वह,
नहीं उदय औ' अस्त, प्रखर मध्यान्ह भी।
ज्यों विराट् की स्थिर पुत्तलिका से अचल
काल ब्रह्म का स्फुरण स्वयं ही हो रहा।

नहुष

एक असोमित अक्षय, क्षीरधि-धार सो
चिर प्रपातिनी बहती बहती जा रही,
क्या था वह जल, या कोई द्रव तरल अति
या केवल नीहार कणों की जान्हवी
श्वेत धूम को सागरिका-सी दीखती
याकि तरंगायित हो केवल ऊर्म्मियाँ
शतशत शशि किरणों को पीतीं उगलतीं
राशि-राशि तूफानी जीवन रूप में;
बालखिल्य से नखत तैरते, उभरते
दीख रहे थे रजत-रश्मि-रस धार में;
भूल नहीं पाया हूँ अब तक प्राण में

वह कुहेलिका कुज्झटिका जो बस गई ।
मेघावलि की पहन लहरिणी शाटिका
श्वेत पवन के रथ पर उड़ती दामिनी
एक कोण से अपर कोण तक क्षिप्रगति
एक चौंध सी खींच हृदय में जो उड़ी;
मन से भी द्रुत और कल्पना से परे
यावत् दृश्य अलात चक्र सा दीखता
शतशत भास्वर पिण्डोदर ब्रह्माण्ड में ?
ज्योति खण्ड से चमक रहे सब दृश्य लख
मूक चेतना, मूक बुद्धि, मन मूक है ।
लगता कितना लघु मैं लघुतम जीव हूँ ।

उर्वशी

कितना वैभव स्वयंभूत निखिलांत क्रम--
इस विशाल ब्रह्माण्ड पिण्ड का अकथ, अर्थ
अनिर्वाच्य, अज्ञेय विश्व का रूप है ।
औ' कितना विस्तार गहन गम्भीरतम
मन:कल्पना से अतीत अज्ञात सब
अविश्वास्य, अविचिन्त्य, ज्ञान से भी परे;
क्या न मानते देवों का ही कार्य यह--
(रुककर)
"धन्य हुए तुम, धन्य विश्व रचना निखिल।"

सभी कल्पनातीत परम रमणीय अति
किन्तु···

उर्वशी

देखती रही कि तन्मय आप हैं।
यही जान मैं लौटी अपने कार्यवश।

नहुष

ऐसा प्राणातीत दृश्य देखा नहीं
पुलकित हैं मन, प्राण ज्ञान सब उर्वशी ?
रोम-रोम के नेत्रों से मैंने पिया––
स्वर्गलोक का अमृत अमर उल्लास मद।
किन्तु···

(टहलते हुए एकदम जैसे कोई बात याद आ गई हो।

उर्वशी

लग रहा मुझको····

नहुष

अब भी शेष कुछ।
किन्तु लौटते हुए स्नान करती हुई
एक अंगना शतशत रति दुर्धर्षिणी
जो देखी अनदेखी शिखरी रूप की
दुग्ध धार सी धवलित गंगाधार में
मानो बिजली ही शरीर धर आ गई

हो, माया सी, छलना सी, ललना कहीं
रूप परी, निर्झरी अमृत की सुन्दरी
और कल्पना परे, न जाने कौन थी ?
वाणी मेरी मूक, अर्थ भी मूढ़ हैं,
मिल सकते क्या शब्द, शब्द निर्भाव हैं ?
सोच रहा हूँ तब से चेतन द्वन्द्वमय–
अनिकेतन से विद्ध रुद्धगति नहुष मैं ?

उर्वशी

स्वर्गंगातट…

नहुष

पहने वह नीहार पट,
मेघों की लट, बिजली सी आभा निपट
शत कमलों की गंध धरे सौरभ छटा।
राग लहर सी, अग्नि शिखा की छहर सी,
दुध फेन का तन, प्रणयी के प्यार सी––
अबिंध मोतियों सी ज्वाला की लड़ी सी;
जैसे लाखों लाख युगों की कान्ति का
अर्क खींचकर देह धारिणी रूपसी
उतरी हो कल्पना कोटि नव रूपिणी
छवि की सुन्दरता की कोई निधि नई;
वह कर से अस्पृश्य, चक्षु से दृश्य भर

दुग्ध फेन सी कोमल, कोयल गीत सी,
वाणी का श्रृंगार, बोध की शान्ति सी।
शीघ्र बताओ सखी उर्वशी, कौन वह
वह उदास मन सी निश्चल, चल भंगिमा
अंग अंग दीपित पुण्यों सी अनघ रति
देवी है गन्धर्व, किन्नरी याकि छवि
स्वयं रूप धर अमर वल्लरी कुहुकिनी
कुज्झटिका सी कौंधी मम मन मेघ में
कौन कौन वह कौन ?

उर्वशी

(**हँसकर**) धैर्य धारण करें।
देव, वही हैं इन्द्राणी, अमरेश्वरी
नित्य स्नान करतीं स्वर्गंगा नीर में
तथा अर्घ्य देती हैं करके प्रार्थना;
वे ही होंगी देवकन्यकागण घिरीं।

नहुष

ज्योति किरण से घिरी उषा मृदुहासिनी
इन्द्राणी वह, अरे, भूल ही मैं गया ?
(**रुककर सोचता हुआ**)
तप से कृश ओ' पुण्य पुष्ट है देह मम,
जान नहीं पाया, जीवन का मार्ग यह,

जिसमें मन उड़ता-उड़ता जुड़ता विकल;
नया अर्थ खुल गया प्राण में शब्द का,
एक खिंचाव भर गया मेरी सृष्टि में,
सरदी में गरमी सी मृदु अनुभूति वह ।
तृप्ति कामना सी जागी है भूख में,
आँखों में बरबस आ बैठी मूर्ति वह
तन में मन में रोम रोम में व्याप्त है
और चेतना में छाया है रूप मद
यह क्या है, क्यों है, क्या मन से जूझता ?
एक नई सी उमड़न, अंगड़ाई नई,
एक घुटन सी पीड़ा भर उत्साह की,
एक स्फूर्ति को, एक दीप्ति की, अलस की,
अंतर में, प्राणों में रह रह हो रही ।

उर्वशी

क्या सचमुच यह पीडा प्राण विषादिनी ?

नहुष

(अपनी ही धुन में)

देव सभा में उस दिन गायन सुना था-
अद्भुत नर्तन देख विवश मन हो गया ।
कई दिनों तक रहे गूँजते गीत वे–
कानों में हर्षाकुल मेरे प्राण में :

बहुत समय तक नर्तन का आनंद भी
अविकल्पित जीवन का सुन्दर रूप धर
बिंबित होता रहा निशा में स्वप्न बन।
प्रति चित्रित तन-मन में छाया मूर्ति सा
खौलाता ही रहा हृदय को, प्राण को।

उर्वशी

अच्छा, ऐसा हुआ बहुत आश्चर्य है ?

नहुष

(उसी ध्यान में)

समझा यह भी होता होगा यहाँ पर,
होता होगा इन्द्रपुरी में प्रकृत सब।
मन को समझाया औ' बैठा ध्यान में
निर्मम होकर दमन किया मन को स्वतः।
थोड़ा सा मन शान्त हुआ अश्रान्त पर,
जो कुछ देखा आज वज्र आघात सा
भूल गया मैं उससे अपना ज्ञान ही।
चरम विषम ज्वाला से मेरा दग्ध मन,
और दग्ध तन, दग्ध हुआ है सभी कुछ,
कैसे हो यह शान्त प्राण की आग जो--
निर्मम क्षण क्षण बडवा सी मनमें जली,
क्या है, कैसी व्याधि, आधि यह प्राण की ?

कहो कहो, कुछ कहो कि मन में शान्ति हो ।

उर्वशी

सचमुच यह है नई व्याधि जो लग गई—
इन्द्रपुरी में आकर प्राण विषादिनी,
मृत्युलोक में कभी न क्या ऐसा हुआ ?
मुझे खेद है आश्चर्य भी कम नहीं ।
इन्द्रलोक में तो ऐसा होता नहीं
सह अनुभूति मुझे है तुमसे कम नहीं ।
क्या करने आये थे यह क्या हो गया ?

नहुष

मर्त्यलोक में मुझे कहाँ अवकाश था,
अश्वमेघ करते-करते ही मन मरा ।
तन का पोषण पालन रक्षण सभी कुछ
भूल गया मैं तप-साधन में, यज्ञ में,
शासन, जप, तप, यज्ञ, युद्ध ही काम थे ।
छोड़ो वह, छोड़ो वह क्या मैंने किया
वहाँ क्या हुआ, कैसे मैं जीता रहा;
शान्त करो मन की पीडा से ज्वलित तन
शान्त करो हे देवि, बहुत ही व्यथित मैं ।
कहो उपाय करूँ क्या कैसे प्राप्त हो
वह आराध्या अमर सुन्दरी हृदय की ।

उर्वशी

(बनावटी ढंग से सोचती हुई)

तो कुछ ऐसा करो कि सुन्दर वर्ण हो,
तप से कृश है यह शरीर औ' विकृत भी,
आकर्षण उत्पन्न करो, कविता कहो,
आँखों में मस्ती भर लो, बहके चलो,
सुरापान कर झूमो, काजल आँज लो,
आँखें मटकाना सीखो, आहें भरो,
अपने आप प्रलाप करो, गाओ, हँसो,
सीखो लक्षण, प्रेमी के, बातें करो--
जड़ से, वृक्षों से, सरिता की धार से,
विहँगों से, पशुओं से, अपने आप से।
इत्रवास से आवासित पट पहन कर
निरुद्देश्य घूमो, प्रलाप करते रहो।
जिससे इन्द्राणी का मन भी चलित हो,
समझें तुम को प्रेमोन्मादी स्वयं वे।

नहुष

क्या सचमुच जो कहती हो वह ही करूँ ?

उर्वशी

करना ही पड़ता है प्रेमी को सभी।

नहुष

तो निश्चय अब तप का जीवन छोड़कर
वही करूँगा जैसा तुम कहती सखी,
करो उपस्थित गंधलेप, अनुलेप सब
चंदन, पट-कौषेय, कल्पतरु के सुमन--
माला धारण करूँ और भूषण सभी
पहनूँगा मैं प्रेयसि के हित सभी कुछ ?

उर्वशी

आकर्षण की सभी वस्तुएँ हैं यहाँ
सभी विभव की सामग्री प्रस्तुत, इन्हें
पहन बना लो अपने को अमरेन्द्र फिर
समझो तत्क्षण फल मिलता है विरह में;
समझो निश्चय इन्द्राणी आईं स्वयम्;
चित्र यहाँ है समुपस्थित देवेन्द्र का
कितने सुन्दर कितने मोहक दीखते;
ऐसे ही इनसे भी अच्छे बनो तो ?

(नहुष विरह की गाढ़ दशा में मूक हो जाता है फिर कुछ बोलने लगता है ।)

पट-परिवर्तन

तीसरा दृश्य

प्रतिहारी

अरी सुनो तो तांबूल वाहिनी सुनो तो,
महाराज से मिलने आये मन्त्रिवर,
द्वार खड़े हैं सूचित तो कर दो उन्हें,
हँसती हो क्या बात हुई कुछ तो कहो ?

तांबूल वाहिनी

(ठठाकर हँसती हुई)
महाराज तो अपनापन भूले हुए
रोने गाने हँसने में ही लीन हैं ।

प्रतिहारी

क्या कहती हो--

तांबूल वाहिनी

--कहती हूँ वह सब सुनो ।

प्रतिहारी

कहो कहो--

तांबूल वाहिनी

—जाने उनको क्या हो गया ?
वेश विदूषक का मदिरा का पात्र ले
पीते जाते हैं गाते हैं कभी कुछ,
आँखें मटका, भोंह नचा, भूखी नज़र,
देखा करते इधर उधर औ' ताकते
देवोद्यान वृक्ष-दल, किसलय, पुष्प से
कभी पूछते उनसे निज प्रिय का पता
कभी आँसुओं की धारा सँग गीत गा
कभी सुबुकते, दौड़ लगाते, ठहरते,
रोते, गाते, हँसते, उठते, बैठते,
और दौड़ते जैसे चोरी धन गया ।
क्या बतलाऊँ जाने उनको क्या हुआ ?

प्रतिहारी

क्या सचमुच—

तांबूल वाहिनी

—मैं सत्य कह रही हूँ सखी ।
सच कहती हूँ, बोलूँगी क्यों अन्यथा ?
वेश देखकर हँसते हँसते दुख उठा—
पेट हमारा. काजल आँखों तक पुता
कपड़े बेतरतीब शाटिका गले में,

उत्तरीय धोती सा घुटनों तक चढ़ा
माला उलटी, अंगद हाथों में बँधा
कंकण भुज में, हार कर धनी रत्न का
बाल मुकुट में उलझे हैं, सब अटपटा
मुँह में कपड़ा ठूँस देखती हम रहीं।
रहा गया जब नहीं भाग कर छिप गईं।

प्रतिहारी

(आश्चर्य से)
तो भी तो क्या हुआ, नया ही आज मैं--
सुनती हूँ ऐसा तो देवों में कभी
नहीं सुना था, क्या वे पागल हो गये ?
क्या कह दूँ फिर ?

तांबूल वाहिनी

(हँसती हुई) मैं क्या उत्तर दूँ भला,

प्रतिहारी

तब भी कुछ तो--

तांबूल वाहिनी

--उन्हें देखने दो स्वयम्।
ऐसा कभी न देखा था मैंने कभी
मर्यादा ही नहीं रही प्रासाद की।

प्रतिहारी

अरी स्वयं ही चले आ रहे मन्त्रिवर।

देवमन्त्री

क्या करते देवेन्द्र, सूचना दी उन्हें ?

तांबूल वाहिनी

(प्रणामकर)

उत्तर देने योग्य नहीं हैं मन्त्रिवर ?

देवमन्त्री

(आश्चर्य और चिन्ता से)

क्यों, कैसे, क्या रुग्ण हो गये, क्या हुआ ?

तांबूल वाहिनी

जाकर देखें कह सकती क्या देव से ?

(उलटकर देखते हैं, अटपटे वेश में नहुष एक वृक्ष से बातें कर रहा है, देवमन्त्री को हँसी आती है पर रोककर पीठ फेरते ही नहुष की दृष्टि उनकी पीठ की तरफ होती है। नहुष किसी भ्रम से उधर दौड़कर नीचो निगाह किये ही उनके पैर पकड़ लेता है और आँखें बंद करके हाथ जोड़कर)

नहुष

तुम्हीं हो, तुम्हीं हो तुम्हीं हो तुम्हीं।

(गाता है)

वरदायिनि, वरदो ?
बसो घ्राण में, बसो प्राण में, तरकस में शरदो।
हृव्य डाल दो ज्वलित अग्नि में पात्र घृतं भरदो।
वरदायिनि; वरदो ?
तेरी ज्वाला में जलते हम, तेरे ही घर में पलते हम,
मेरा मन भूभल सा दहता जल से तर कर दो।
वरदायिनि, वरदो।

(देवमन्त्री आश्चर्य से उचककर पीछे हटते हैं किन्तु नहुष आँख मीचे उसी मुद्रा में बैठा है)

देवमन्त्री

यह क्या है तांबूल वाहिनी, क्या हुआ ?
महाराज को——

तांबूल वाहिनी

(**सप्रणाम**)——स्वयं नहीं मैं जानती।
सखी उर्वशी के जाने के बाद ही।

(नहुष उठकर देवमन्त्री के पीछे दौड़ता है। देवमन्त्री रंगमंच के चारों ओर चक्कर लगाते हैं)

नहुष

(**ठहरकर**)
तनिक हेर लो, तनिक घेर लो दयामयि ?

भागो मत हिरनी सी, मैं भी हिरन हूँ।
तुम ही जीवन, तुम्हीं मरण हो, चरण दो
सेवन उनका करूँ——

देवमन्त्री

(**उसी अधीरता से**) ठहरिये दूर ही।
सुनिये सुनिये, वहीं ठहरिये बात क्या ?
भूल रहे हो मैं, देवाधिप, आपका…!

नहुष

(**हैरान होकर**) अरे, आप हैं (**हाथ जोड़कर**)
देवमन्त्रिवर, आप हैं ?
क्षमा करें मैंने समझा था शची हैं।

देवमन्त्री

शची, शची क्यों ?

नहुष

प्रेमी हूँ मैं प्रेम का !
(**फिर अपने में खोकर**)
हे देवी, आराध्यमयी, हे सुन्दरी ?
दया करो करुणा करो हेरो ओर मम
मुझे चरण दो मुझे शरण दो…

देवमन्त्री

(**चिल्लाकर**) चुप रहो।

नहुष

नहीं नहीं मैं चुप रह सकता हूँ नहीं ।
उबल रहा है तन मन अबुझ हुताग्नि सा
मैं रह सकता नहीं तुम्हारे बिन सखी ?
जलती है दावा मन के बन धाँय धूँ ।

(देवमन्त्री आश्चर्य और भय से हटकर एक ओर खड़े हो जाते हैं नहुष आँखें खोलकर)

चली गईं बिन मिले चली ही तुम गईं ।
प्राणाधार सभी जीने की आस ले ?

(इसी समय उर्वशी के साथ शची प्रवेश करती है । नहुष को अपनी धुन में सामने दीवार पर स्त्री का एक चित्र दिखाई देता है । वह आगे बढ़कर पूर्ववत् वियोग की असह्य दशा में जैसे भित्तिचित्र स्त्री को देखकर पुष्प हार ले दौड़ता है । शची उर्वशी के साथ एक कोने में खड़ी हो कर देखती है कि नहुष इधर-उधर दौड़ता है ।)

नहुष

(चिल्लाकर) अरे अरे **(धीरे से)** मैं भूल गया
हूँ नाम तो.. **(चिल्लाकर)** ओ वाहिनि, ओ सखी,
(धीरे से) न जाने नाम क्या ?
ओ वाहिनि **(याद करके)** तांबूल वाहिनी
हार ला,

धूप दीप ला, माला ला, आसन विछा,
हा-हा-हा मेरा कितना धनभाग कितना है ?
(**घबराकर**)
धूप नहीं है, दीप नहीं, आसन नहीं,
कैसी है यह इन्द्रपुरी अमरावती ?
अरी सुनो क्या कोई भी सुनता नहीं !
हे देवी, (**दोनों आँखों को हाथों से फाड़कर**)
इन आँखों में अधिवास हो
हृदय रिक्त है उसमें ही बैठो सखी,
(**आँखें खोलकर**) क्या, क्या, यह तो हाय,
भित्ति का चित्र है ।
कोई चिन्ता नहीं यही आराध्य हो ।
(**आंखें बंद करके**)
अरी तुम्हीं हो, तुम्हीं प्राण अभिनन्दिनी
अरी तुम्हीं हो, तुम्हीं नहुष आनन्दिनी
अरी तुम्हीं हो मेरी प्राणों की चमक
अरी तुम्हीं हो जीवन रजनी में शशी,
हे देवी, कल्याणमयी, सुन्दरि सुमुखि,
कर दो मुझको (**चिल्लाकर**) आगे उर्वशी
क्या कहूँ ?
याद आ गया, याद आ गया उर्वशी

(फिर उसी रूप में)
नहीं, नहीं सुनती हो, हे गति मति हरे,
तो मैं भी दे दूँगा अपने प्राण ही
प्राण प्राण हे प्राण प्रिये लो प्राण ये
(गिरता है)

शची

यह क्या इनका वेश

उर्वशी

जानती मैं नहीं।

शची

(तांबूल वाहिनी से) तू कह, तू कह—

तांबूल वाहिनी

कुछ भी जानूँ तो कहूँ।

देवमन्त्री

आश्चर्य है मुझको भी कुछ कम नहीं
क्या यह पद के योग्य ?

शची

बहुत धोखा हुआ।
यह अभद्र, अविनीत शिष्टता से परे।

देवमन्त्री

(ध्यान करके)

पुण्य क्षय का समय निकट ही देवि है।
हम क्यों कारण बनें स्वयं ही फल मिले,

शची

यह असह्य है मुझे घृणा होती चलो,
(जाने लगती है)

नहुष

(चेतन होकर)
सुनो देवमन्त्री, इन्द्राणी तुम सुनो,
मैं हूँ अब अमेरेन्द्र सभी का अधिप हूँ,
याद नहीं क्यों आया अब तक यह मुझे
है अधीन मेरे वशवर्ती सभी सुर,
इसी दृष्टि से इन्द्राणी का पति हुआ
ठहरो, ठहरो, आज्ञा है यह नहुष की

देवमन्त्री

(शची के कान में)
अभी पतन के लिए कृत्य कुछ शेष हैं।

नहुष

बोलो, क्या कहती हो धीरज अब नहीं ?
तुम्हें आज्ञा में ही चलना चाहिए।

देवमन्त्री

पति का अर्थ नहीं है पत्नी भृत्य हो,

और विवश होकर आज्ञा में वह चले ?
इन्द्रपुरी में नियम नहीं ऐसा कहीं,
पति पत्नी स्वाधीन, प्रेम ही बाँधता ।

नहुष

मैं हूँ इन्द्र नियम भी मेरे चलेंगे
मेरी इच्छा के वशवर्ती हैं सभी
जो चाहूँगा नियम बनाऊँगा सुनो ।
तुम हो कोई नहीं नियम मैं हूँ स्वयम्
फिर भी देवी इन्द्राणी से प्रार्थना--
करता हूँ वे मुझे चुने मानें स्वपति,

देवमन्त्री

क्या यह है कुछ उचित आप जो कह रहे ?

नहुष

अनुचित इसमें मुझको कुछ लगता नहीं ।

देवमन्त्री

सोच लीजिए यह देवों का धाम है ।

नहुष

इसी धाम का मैं भी तो देवेन्द्र हूँ ।

देवमन्त्री

शची करेंगी निर्णय इसका स्वयं ही ।

शची

(आगे बढ़कर, देवमन्त्री को हाथ जोड़ती हुई)

हाँ, मुझको स्वीकार्य, शर्त है एक पर...

नहुष

क्या क्या, वह भी कहो करूँगा मैं वही,
सब ही मुझको, मान्य, मान्य हे सुन्दरि ?
लौटा लूँगा मैं त्रिभुवन के नियम सब--
उलट पुलट दूँगा केवल सब प्रेम में–
बाधा आवे नहीं शची की प्राप्ति में ।

शची

तो सुनिए--

नहुष

सुनता हूँ मन से, प्राण से ।

शची

सप्तऋषि द्वारा वाहित यदि पालकी
आवें उसमें बैठ आप प्रासाद में ।

नहुष

(प्रसन्न होकर)

यह कितनी सी बात करूँगा मैं वही,
आज रात ही ऋषिवाहित पथ पारकर
आऊँगा दर्शन करने मैं महल में ।

(देवमन्त्री को गर्व से)

ऋषियों को आज्ञा दो लावें पालकी
मैं चढ़कर जाऊँगा देवी के महल ।
यह कितनी सी बात · · · · उर्वशी धन्य तुम—

(नेपथ्य में नगाड़े पर जोर की थाप पड़ती है)

चौथा दृश्य

[**पालकी के चारों ओर ऋषि खड़े हैं**]

पहला ऋषि

यह क्या, यह क्या, अरे कहीं ऐसा सुना ?

दूसरा ऋषि

यह है महा-अनर्थ, कहीं ऐसा हुआ ?

तीसरा ऋषि

लेकर हम पालकी चलें इस नहुष की ?

पहला ऋषि

निश्चय कुछ अनहोनी होती दीखती ।

पाँचवाँ ऋषि

यह अनहोनी हम सातों के लिए ही ?
कभी न ऐसा किया—

छठा ऋषि

(हँसकर)

करो फिर आज वह ।
मुझे दीखता इसमें भी कल्याण है ।

सातवाँ ऋषि

क्या कल्याण तुम्हें दिखलाई दे रहा ?
संभव है यह पूर्व पाप का हो कुफल ?

हाँ, हम सब हैं अश्व, और नृप दास हैं।
हँसी करो मत—मर्मान्तिक पीड़ा असह।
यह आज्ञा है उस कामुक देवेन्द्र की--
सब विवेक धुल गया कि जिसका ज्ञान में।

छठा ऋषि

(शान्त एवं स्थिर दृष्टि से आकाश की ओर ताकता हुआ)

क्या हम जो कुछ करते रहता ज्ञात है?
निहित भविष्यत् में रहता है कर्मफल,
वही हमारे पापों को धो डालता।
उसमें ही है गति उस कामी नहुष की।
वर्तमान में जो होता है भविष्यत्--
में वह धारण करता अपना रूप है।
चलो उठाओ जो न किया वह अब करें।

दूसरा ऋषि

मानव के कंधों पर चढ़ना मनुज का--?

तीसरा ऋषि

फिर ऋषियों के कंधे पर जो तपस्वी--?

दूसरा ऋषि

जिनका चिन्तन मनन ज्ञान पुरुषार्थ है?

छठा ऋषि

फिर तो यह है भोग्य क्यों न भोगें इसे ?
आओ देखें क्या होता है सुखद फल ।

(कोलाहल के साथ नहुष आता है)

नहुष

सब कुछ है तैयार आ गये ऋषि सभी,
ठीक ठीक ही हुआ, क्षमा हो बन्धुगण ?
देवी इन्द्राणी की आज्ञा है यही ।
शीघ्र चलो बिन रुके, दौड़ते अश्व से,
मानूंगा आभार, उठाओ पालकी ।

(बैठता है । पालकी चलती है)

रुको नहीं, कंधे मत बदलो, उड़ चलो,
क्षण भर की भी देर सही जाती नहीं;
व्यग्र प्रतीक्षा में होगी अमरेश्वरी ।
मेरा मन तो विद्युत की गति दौड़ता ।
अरे रुक गये, क्या करते दौड़ो तनिक—

(कंधे बदलते हैं । सुस्ताने को साँस लेने लगते हैं)

खाते पीते रहते हो आराम से
तनिक काम आ पड़ा रो उठे, मर गये ?
जैसे इनकी अपनी नानी मर गई—

चलो, रुको मत कंधे मत बदलो चलो ।
कैसे हैं मोटे-मोटे से ठूँठ ये
ऐंसे चलते हैं, जैसे निर्जीव हों ।
(क्रोध में भरकर)
सुनते हों, बहरे हो, टांगें नहीं क्या ?
कंधे भी टूटे हैं, क्या रे सात हो ?
एक जने का बोझ, मौत क्या आ गई ?
(सामने पास के ऋषि को लात मारता है)
सुनते ही कुछ नहीं, बढ़ो, आगे बढ़ो
बढ़ो, बढ़ो,

पहला ऋषि

कामुक, अज्ञानी, धूर्त, विट,

दूसरा ऋषि

नीच, मंदमति, मूर्ख, साँप से पैर हैं ।

तीसरा ऋषि

सर्प दंश सा हुआ सर्प हो, सर्प हो,
(पालकी गिरा देते हैं। नहुष पालकी से गिर पड़ता है)

नहुष

(उठकर सोचता हुआ)
पाप जघन्य हुआ यह मुझसे क्षम्य हूँ

क्षमा करो ऋषिगण ? मुझको मैं क्षम्य हूँ ।

सब ऋषि

सर्प सर्प बन अभी स्वर्ग से गिर नहुष ?
हे अयोग्य, तू है अयोग्य तू सर्प बन ।

(वज्र विस्फोट-सा धमाका, नहुष पीठ के बल सपाट गिर जाता है । पीठ से दिखाई देता है जैसे एक लम्बा साँप हो ।)

नहुष

हाय, हुआ क्या मुझसे इस पापात्म से ।
सोच नहीं पाया इसका परिणाम भी ।

वृहस्पति

(ऋषियों से)

होना जो था वही हुआ, अब दुःख क्या,
आग्रह था यह तुम सबका हो नहुष ही
इन्द्र लोक का राजा, किन्तु अयोग्य था ।
गर्व अहं का उसे खा गया बन्धुवर ।
योग्य व्यक्ति से योग्य कार्य संभव सदा ।

(शोक, छटपटाहट के साथ पर्दा गिरता है)

●

हिन्दी के आधुनिक नाटक-साहित्य के उन्नायकों में बहुमुखी प्रतिभा एवं रचना-कौशल की दृष्टि से श्री उदयशंकर भट्ट का स्थान बहुत ऊँचा है। हिन्दी नाटकों के लिखने की प्राचीन शैली को तोड़ते हुए जीवन की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति को अधिक स्पष्ट और सजीव बनाकर उच्च स्तर पर लाने वालों में आपका अपना विशिष्ट स्थान है। अकेले नाटक-क्षेत्र में ही आपने विषय-वस्तु, उद्देश्य तथा शिल्प-विधान की दृष्टि से भिन्न रूपों, भेदों को ग्रहण किया है। पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक नाटकों के साथ-साथ समस्यापरक नाटकों की भी आपने रचना की है। गीति-नाट्य, एकांकी, रूपक, रेडियो रूपक में भट्टजी की कला काव्य की समृद्धि, रोचकता तथा सजीवता से सम्पन्न है।

'नहुष-निपात' भावात्मक एवं यथार्थवादी पद्य-शैली में लिखा गया पौराणिक नाटक है। नहुष कर्त्तव्य-च्युत काम-वासना का प्रतीक है। मनुष्य काम से पीड़ित होने पर किस तरह ज्ञानान्ध हो जाता है इसी का सजीव चित्रण इस नाटक में किया गया है। वर्णन-वैचित्र्य, संवादों का चुटीलापन, भाव-गोपन में भट्टजी का यह नाटक अद्भुत है।

□ □ □

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६